मानव इतिहास को सहेजती गोत्र प्रणाली

- लेखक : डॉ. नीता चौबीसा
- तारीख : July 13, 2022

जो समाज अपने पूर्वजों के बारे में जानकारी नहीं रखता, अपने पुरखों की सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण न कर उन्हें भूल जाता है ,वहां समाजीकरण में अत्यंत वीभत्स दृश्य पैदा होते है और अंततः विप्लप या आतंक का कारण बनते है। प्राचीन भारतीय मनीषी इस मनोवैज्ञानिक सत्य से भलीभांति परिचित थे इसलिए उन्होंने आरम्भ से ही उसे वंशावली लेखन के रूप में सहेजने की वैज्ञानिक विधा का प्रणयन किया। इसके प्रमाण वैदिक वांग्मय ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों में वर्णित वंशावलियां है जो भारत के प्राचीन इतिहास का आधार बनी।

हमारी ऋषि परम्परा अपूर्व मनस्वी, तेजस्वी मेधा का साक्षात थी अतः उन्होंने वंशावली लेखन को अत्यन्त प्राचीन काल से ही वैज्ञानिक रूप से अतीत से साक्षात्कार कराने वाली विधा के रूप में विकसित किया। सृष्टि की रचना से लेकर अपने पूर्वजों के समय की ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक घटनाओं का वर्णन करते हुए उस व्यक्ति का वंशक्रम अपनी भोजपत्रों, ताम्रपत्रों, हस्तलिखित पोथियों में आलेखित करना हमारी ऋषि परम्परा का पुरुषार्थजनित वह कर्म था जिससे सामाजिक समरसता व राष्ट्रीय एकात्मकता का संचार हो सके।

भारतीय वंशावली लेखन परम्परा व्यक्ति के इतिहास को शुद्ध रूप से सहज कर रखने की गौरवशाली प्रणाली है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति या वर्ग वंशावलियों का वैज्ञानिक पद्धति से विश्लेषण करते हुए इनका उपयोग सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक व विविध तथ्यों का समावेश पोथियों या बहियों के रूप मे कर भावी पीढी के लिए इतिहास सुरक्षित रखा जा सकता है। मानव इतिहास के विभिन्न पक्षों मूल वर्ण, कुल, जाति उद्भव, पूर्वत आदि की जानकारी हमें इन्ही वंशावलियों से होती है।

प्राचीन भारतीय वंशावली लेखन की श्रुति परम्परा की जड़ें तीर्थस्थल नैमिषारण्य में एकत्र आर्यावर्त के अट्ठासी हजार ऋषियों

से श्रीसूतजी का कलिकाल में मनुष्य के कल्याण से जुड़ा वार्तालाप में भी खोजी जानी चाहिये।भारतीय पुराण तो वंशावलीयो के वे खजाने है जिनसे हमारी पहचान है और इसी से भारतीय इतिहास का निर्धारण हुआ है।

अतीत से साक्षात्कार करवाती ये वंशावलियां हमारे पूर्वजों की वे थाती है, जिनके गर्भ में हमारी कितनी ही राष्ट्रीय समस्याओं, एकता, अखंडता, सामाजिक समरसता का समाधान छुपा है। भारत मे वंशावली लेखन अत्यन्त प्राचीन और वैज्ञानिक परम्परा के रूप में विकसित हुआ। यह वंशवृक्ष अतीत से साक्षात्कार कराते है। वस्तुतःप्रकृति में प्रत्येक जीव व अजीव का अपना महत्व होता है, उनकी उत्तपत्ति व विकास की गाथा ही वंशावली है।

हमारे वेद वांग्मय और पुराण वंशावली के आदिस्रोत है जिनसे भारतीय इतिहास -संस्कृति को ज्ञात किया जा सकता हैं। भारतीय सन्दर्भ में वंशावली का सीधा सम्बन्ध समाज की वंश परम्परा, रीति-रिवाज, संस्कृति, गोत्र, प्रवर, शाखा, प्रशाखा, वेद, उपवेद, ईष्ट, भैरव, जीवनमृत्यु आदि विशेषताओं की व्यख्या से है। भारतीय सनातन संस्कृति के विकास यात्रा में आर्ष परम्पराओं का वृहद योगदान है। ये वे परम्पराए हैं जो हमारे ऋषियों की मौलिक वैज्ञानिक सोच का परिणाम है और जिनका हमारी सामाजिक सरंचना के निर्माण में गहन योगदान रहा है।

ऐसी ही एक परम्परा -गोत्र परम्परा है जिसके आधार पर हम सभी ऋषियों की संतान कहे जाते है, जिससे हमारे पूर्वजों की वंशावली का पता चलता है। गोत्र भारतीय समाज मे जाति विशेष के भीतर की वंश परंपरा का द्योतक है। हिन्दुओं में वैवाहिक संबंध स्थापित करते समय 'गोत्र' एक महत्त्वपूर्ण तथ्य होता है क्योंकि आर्ष ग्रन्थों के अनुसार सगोत्री विवाह वर्जित है। गोत्र शब्द का प्रथम उल्लेख अथर्ववेद में आता है जिसका अभिप्राय वंश या कुल से था। व्यापक और वास्तविक शाब्दिक अर्थ में 'गोत्र' का अभिप्राय 'गो' अर्थात् पृथ्वी और 'त्र' का अर्थ 'रक्षा करने वाला' भी है। यहाँ गोत्र का अर्थ पृथ्वी की रक्षा करने वाले ऋषि से ही है। गो शब्द इन्द्रियों का वाचक भी है, ऋषि- मुनि अपनी इन्द्रियों को वश में कर अन्य प्रजाजनों का मार्ग दर्शन करते थे, इसलिए वे गोत्रकारक कहलाए।

ऋषियों के गुरुकुल में जो शिष्य शिक्षा प्राप्त कर जहा कहीं भी जाते थे, वे अपने गुरु या आश्रम प्रमुख ऋषि का नाम बतलाते थे, जो बाद में उनके वंशधरो में स्वयं को उनके वही वंशी या गौत्री कहने की परम्परा आविर्भूत हुई। आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के क्रम में गुरु या ऋषि-मुनियों के नाम से अपना संबंध जोड़ते हुए नई पहचान गोत्र के रूप में आई।

एक ही प्राचीन ऋषि आचार्य के शिष्यों को गुरुभाई मानते हुए पारिवारिक संबंध स्थापित किए गए और जैसे भाई और बहन का विवाह नहीं हो सकता उसी तरह गुरुभाइयों के बीच विवाह संबंध ग़लत माना जाने लगा। बृहदारण्यक उपनिषद में अंत में ऐसे कुछ ऋषियों के नाम दिए गए हैं। इन ऋषियों में अनेक के नाम आदिम माने जाने वाले आटविक समुदायों में आज भी पाए जाते हैं। इसका कारण यह है कि सभी वर्णों के लोग कृषि से पहले आखेट और वनकंदों, फलों आदि पर निर्भर करने वाले वनचरों से ही निकले हैं।

जाति की तरह गोत्रों का भी अपना महत्व है। विविध गोत्रों से व्यक्ति और वंश की पहचान होती है, गोत्रों से व्यक्ति के सम्बन्धों की पहचान होती है, सम्बन्ध स्थापित करने में सुविधा रहती है, गोत्रों से आत्मीय निकटता स्थापित होती है और भाईचारा बढ़ता है, गोत्रों के इतिहास से व्यक्ति गौरवान्वित महसूस करता है और प्रेरणा लेता है। यह एक ऋषि के माध्यम से शुरू होता है और हमें हमारे पूर्वजों की याद दिलाता है और हमें हमारे कर्तव्यों के बारे में बताता है।

आगे चलकर यही गोत्र वंश परिचय के रूप में समाज में प्रतिष्ठित हो गया। एक सामान गोत्र वाले एक ही ऋषि परंपरा के प्रतिनिधि होने के कारन भाई-बहिन समझे जाने लगे जो आज भी प्रचलित है। गौत्र परम्परा के संदर्भ में महाभारत के शान्तिपर्व (२९६ -९७ , ९८) में वर्णन है कि उस काल मे मूल चार गोत्र प्रमुख थे- अंगिरा, कश्यप, वशिष्ठ, भृगु परन्तु कालांतर में इसमे जमदग्नि, अत्रि, विश्वामित्र तथा अगस्त्य के नाम और जुड़ गए तो यह आठ हो गए।

गोत्रों की प्रमुखता उस काल में बढी जब जाति व्यवस्था कठोर हो गई और लोगों को यह विश्वास हो गया कि सभी ऋषि

ब्राह्मण थे। वस्तुतः वैदिक वांग्मय में कहा गया है-'ब्रह्म जानेति इति ब्राह्मण।' अतः इस अर्थ में इन गोत्र कारक ऋषियों का ब्राह्मण होने का आधार वर्ण नहीं वरन वैदिक ज्ञान था। अन्य वैदिक परंपराओं यथा प्रवर, वेदी, उपवेदी, शाखा आदि के गहन विश्लेषण अध्ययन से ज्ञात होता है कि कालांतर में इन आठ गोत्र कारक ऋषियों के सम्पर्क में दूसरे ऋषियों के आने के कारण अन्य गोत्र अस्तित्व मैं आये।

इस सम्पर्क का आधार भी किसी न किसी रूप में ज्ञान ही रहा। जैसे कर्मो द्वारा ऋषिकुल में प्राप्त की गई श्रेष्ठता के अनुसार उन गोत्र प्रवर्तक मूल ऋषि के बाद होने वाले अन्य महान व्यक्ति उस गोत्र के प्रवर कहलाये। इसका अर्थ है कि किसी कुल में गोत्रप्रवर्त्तक मूल ऋषि के अनन्तर तीन अथवा पाँच आदि अन्य श्रेष्ठ ऋषि भी विशेष महान हुए थे। जैसे- श्रीराम सूर्यवंश में हुए। इस वंश के प्रथम व्यक्ति सूर्य थे इसलिए सूर्यवंशी कहलाए। आगे चलकर इसी वंश में रघु राजा प्रसिद्ध हो गए, तो इस वंश का नाम भी रघुवंश या राघव वंश प्रचलित हो गया। इसी प्रकार इक्ष्वाकु भी प्रसिद्ध राजा हुए, तो उनके नाम से भी इस वंश को इक्ष्वाकु वंश भी कहा जाने लगा।

इसी क्रम में ब्राह्मणों के ऋषि वंश में उदाहरण को भी देखा जा सकता है जैसे वशिष्ठ ऋषि का वंश। वशिष्ठ के नाम से वशिष्ठ गोत्र चल पडा। अब इसी वंश में वाशिष्ठ, आत्रेय और जातुकर्ण्य ऋषि भी हुए जो इन्ही के प्रवर हुए। वास्तव में गौत्र और प्रवर दोनों एक ही मूल पुरुष से जुडे हुए हैं। प्रवर व्यवस्था का ज्ञान पाणिनि के सूत्र से मिलता है। इसमे प्रथम प्रवर गोत्र के ऋषि का होता है, दूसरा प्रवर ऋषि के पुत्र का होता है, तीसरा प्रवर गोत्र के ऋषि पौत्र का होता है। इस प्रकार प्रवर से उस गोत्र प्रवर्तक ऋषि की तीसरी पीढी और पाँचवी पीढी तक का पता लगता है परन्तु इनका आदि पुरुष एक ही ऋषि होता है।

इसी प्रकार जिन ऋषियों ने वेदों का साक्षात्कार किया उनकी श्रुति परम्परा में बाद में आने वाली पीढ़ी को पहुचाया उन्हें ब्राह्मण परम्परा के संदर्भ में देखा जा सकता है। इन वेदों के उपदेशक गोत्रकार ऋषियों के जिस भाग का अध्ययन, अध्यापन, प्रचार-प्रसार, आदि किया, उसकी रक्षा का भार उसकी संतान पर पड़ता गया इससे उनके पूर्व पुरूष जिस वेद के ज्ञाता थे तदनुसार वेदाभ्यासी यथा यजुर्वेदी, सामवेदी कहलाते हैं।

प्रत्येक ब्राह्मण का अपना एक विशिष्ट वेद या उपवेद होता है, जिसे वह अध्ययन-अध्यापन करता था बाद में वह जाति रूप में संगठित होने लगे। वेदों के विस्तार के साथ ऋषियों ने प्रत्येक एक गोत्र के लिए एक वेद के अध्ययन की परंपरा विकसित की है। कालान्तर में जब एक व्यक्ति उसके गोत्र के लिए निर्धारित वेद पढने में असमर्थ हो जाता था तो ऋषियों ने वैदिक परम्परा को जीवित रखने के लिए शाखाओं का निर्माण किया। इस प्रकार से प्रत्येक गोत्र के लिए अपने वेद की उस शाखा का पूर्ण अध्ययन करना आवश्यक कर दिया। इस प्रकार से उन्होंने जिसका अध्ययन किया, वह उस वेद की शाखा के नाम से पहचाना गया। इस संदर्भ में त्रिवेदी, द्विवेदी, चतुर्वेदियों की ब्राह्मण परम्परा को देख सकते है। अधरव्यू एवं होता के आधार पर भी कई गौत्र पहचाने गए जैसे अग्निहोत्री आदि। कालांतर में गोत्र प्रणाली जटिल होती गई और जातीय समीकरण उभरने लगे।

वर्तमान में भारतीय हिन्दूओं में प्रचलित मान्यतानुसार सामान्यतः गोत्र उन लोगों के समूह को कहते हैं जिनका वंश एक मूल पुरुष पूर्वज से अटूट क्रम में जुड़ा है। व्याकरणिक दृष्टि से पाणिनि ने गोत्र की परिभाषा देते हुए लिखा है- 'अपात्यम पौत्रप्रभृति गोत्रम्' (४.१.१६२), अर्थात 'गोत्र शब्द का अर्थ हुआ बेटे के बेटे के साथ शुरू होने वाली अथवा एक साधु की संतान् की पहचान संकेत। गोत्र, कुल या वंश की वह संज्ञा है जो उसके किसी मूल पुरुष के अनुसार होती है।

भारत में हिंदू विधि के मिताक्षरा तथा दायभाग नामक दो प्रसिद्ध सिद्धांत हैं। इनमें से दायभाग विधि बंगाल में तथा मिताक्षरा पंजाब के अतिरिक्त शेष भारत में प्रचलित है। पंजाब में इसमें रूढ़िगत परिवर्तन हो गए हैं। मिताक्षरा विधि के अनुसार रक्तसंबंधियों के दो सामान्य प्रवर्ग होते हैं : प्रथम-गोत्रीय अथवा गोत्रज सपिंड, जो प्रायः किसी व्यक्ति से पितृ पक्ष के पूर्वजों अथवा वंशजों की एक अटूट श्रृखंला द्वारा संबंधित होंता है। इसमे वंशपरंपरा का बने रहना अत्यावश्यक है और द्वितीय अन्य गोत्रीय अथवा भिन्न गोत्रीय अथवा बंधु जो अक्सर किसी व्यक्ति से मातृपक्ष द्वारा संबंधित होते हैं।

गोत्रीय से आशय उन व्यक्तियों से है जिनके आपस में पूर्वजों अथवा वंशजों की सीधी पितृ परंपरा द्वारा रक्तसंबंध हों। परंतु यह वंश परंपरा किसी भी ओर अनंतता तक नहीं जाती। यहाँ केवल वे ही व्यक्ति गोत्रीय हैं जो समान पूर्वज की सातवीं पीढ़ी के भीतर आते हैं। हिंदू विधि के अनुसार पीढ़ी की गणना करने का भी एक विशिष्ट तरीका है। यहाँ व्यक्ति को अथवा उस व्यक्ति को अपने आप को प्रथम पीढ़ी के रूप में गिनना पड़ता है जिसके बारे में हमें यह पता लगाना है कि वह किसी विशेष व्यक्ति का गोत्रीय है अथवा नहीं। किसी व्यक्ति के दादा के छ: पुरुष वंशज और परदादा के पिता के छ: पुरुष वंशज भी गोत्रज सपिंड हैं। हम इन छ: वंशजों की गणना पूर्वजावलि के क्रम में तब तक करते हैं जब तक कि क्रमशः सात पीढियां नही हो जाती है। इन पितृपक्ष के छह वंशजों की धर्मपत्नियाँ अर्थात् उसकी माता, दादी, परदादी और उसके परदादा के परदादा की धर्मपत्नी तक भी गोत्रज सपिंड ही कहलाती हैं। सम्भवतया ऐसा इसलिए है कि मनुस्मृति के अनुसार सात पीढ़ी बाद सगापन खत्म हो जाता है अर्थात सात पीढ़ी बाद गोत्र का मान बदल जाता है और आठवी पीढ़ी के पुरुष के नाम से नया गोत्र आरम्भ होता है।

किन्तु यह वैधिक निर्वचन भी एक सीमा तक सम्यक् तथा संकुचित ही है क्योंकि इन समान पूर्वज की १३वीं पीढ़ी के बाद से ४१ वीं पीढ़ी तक के इन पूर्वजों के वंशजों जो व्यक्ति होंते है उन्हें कालांतर में सगोत्री न कह कर 'समानोदक' कहा गया है। 'समानोदक' अर्थात वे व्यक्ति हैं जिन्हें श्राद्ध करते समय हम जल देते है। किंतु व्यापक दृष्टि से समानोदक भी गोत्रीय ही होते हैं। हेमाद्रि चन्द्रिका के अनुसार-"गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमुच्यते।यस्मादाह श्रुतिस्सर्वाः प्रजाः कश्यपसंभवाः।"अर्थात किसी कारण वश जिनके गोत्र ज्ञात न हों उन्हें काश्यपगोत्रीय माना जाता है। ऐसा इसलिए होता क्योंकि कश्यप ऋषि के एक से अधिक विवाह हुए थे और उनके अनेक पुत्र थे। अनेक पुत्र होने के कारण ही ऐसे ब्राह्मणों को जिन्हें अपने 'गोत्र' का ज्ञान नहीं है 'कश्यप' ऋषि के ऋषिकुल से संबंधित मान लिया जाता है। आज भी विशेषकर ब्राह्मणों में गोत्र का विशेष महत्व होता है।

भारत की जटिल जातिवादी सरंचना के मूलाधार के रूप में प्रचलित गौत्र व्यवस्था ही है। जातिवादी सामाजिक व्यवस्था की खासियत ही यही रही कि किसी एक समय और एक स्थान पर इन गोत्रों की उत्पत्ति नहीं हुई है अपितु समय की गतिशील धुरी पर निरन्तर परिवर्तन के क्रम में इनका विकास हुआ जिससे हर समूह को एक खास पहचान मिली। भारत की कृषि प्रधान आर्य संस्कृति का भी इसमें खास योगदान दृष्टव्य होता है। वैदिक आर्यो की ऋषि परम्परा कृषि और गोपालन की संवाहक रही है। इन दोनों की सन्निधि में रह कर वे पठन-पाठन, इज्या, शासन, कृषि, प्रशासन, गोरक्षा और वाणिज्य के कार्यों द्वारा अपनी जीविका चलाते थे।

आर्य ऋषिजन कृषि विज्ञान में पारंगत थे और कृषि में गाय को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया। गाय भारतीय कृषि और जीवन की धुरी बन चुकी थी अतः गौपालन ऋषियों का एक सुनियोजित कर्म था। यद्यपि गायें पारिवारिक संपत्ति होती थी पर उनकी देख रेख, संरक्षण ऋषियों की देख-रेख मैं सामुदायिक तरीके से होता था। अपनी गायों की रक्षार्थ वे कुछ भी कर गुजरने को तैयार रहते थे। इस प्रकार गौपालन के प्रवर्तक ऋषि, गौपालन करनेवाले अनेक वंशों के अलग-अलग कुल सुविधानुसार अलग-अलग ऋषियों की छत्र छाया में रहते थे। लोग ऋषि के आश्रम के पास ग्राम बना कर गौपालन, कृषि और वाणिज्यिक कार्य करते थे जिससे जो लोग किसी ऋषि के पास रह कर गौपालन करते थे वे उसी ऋषि के नाम के गोत्र से पहचाने जाने लगे। इस संदर्भ में आर्ष ग्रंथ में ऋषियों के गो सम्बन्धित अनेक रोचक कथाएं पढने मिलती है।

जैसे कश्यप ऋषि के साथ रहने वाला रामचंद्र अपना परिचय इस प्रकार देता है-"कश्यप गोत्रोत्पन्नोहम रामचंद्रसत्वामभीवादाये।" अर्थात"मैं कश्यप गोत्र मैं पैदा हुआ रामचंद्र आपको प्रणाम करता हूँ।" इस तरह कश्यप ऋषि के साथ रहने वाले सभी वर्णों के लोग कश्यप गोत्र के हो गए।

गोत्र मातृवंशीय भी हो सकता है और पितृवंशीय भी। जैसे सातवाहनों की परम्परा मातृवंशीय है। आज भी दक्षिण भारत मे कुछ गौत्र मातृवंशीय परम्परा का प्रतिनिधित्व करते है। बाद में भारतीय समाज मे कहीं कहीं परिवार के इष्ट देव या देवी के नाम से भी गोत्र प्रचलित हुए। इससे इतर जनजातीय कुलों के महत्वपूर्ण वृक्ष या पशु-पक्षियों के नाम से उनमे गोत्र बने। इसके अतिरिक्त जनजातियों में विशिष्ट चिह्नों से भी गोत्र तय होते हैं जो वनस्पतियों से लेकर पशु-पक्षी तक हो सकते हैं। क्योंकि

जनजातियां इन्हीं की सन्निधि में ज्यादा रहती थी अतः इनके गौत्र के आधार शेर, मगर, सूर्य, मछली, पीपल, बबूल आदि भी इसमें शामिल हैं। यह परम्परा आर्यों में भी रही है। क्योंकि परवर्ती काल मे दृढ़ होती वर्ण व्यवस्था में अन्यों की स्थिति ठीक नही रही अतः यजमानी प्रथा का प्रचलन हुआ। अन्य जिस ब्राह्मण और क्षत्रिय परिवार का परम्परागत अनन्तकाल तक सेवा करते रहे, उन्होंने भी उन्हीं ब्राह्मणों और क्षत्रियों के गोत्र अपना लिए। इसी कारण विभिन्न आर्य और अन्य जातियों तथा वर्णों के गोत्रों में समानता पाई जाती है। हालांकि गोत्र प्रणाली काफी जटिल है पर उसे समझने के लिए ये मिसालें सहायक हो सकती हैं। वस्तुतः गौत्र परम्परा समाज के विभेदीकरण का नही अपितु वैज्ञानिक दृष्टिकोण की परिचायक है।

सामान्य रूप से गोत्र को बहिर्विवाही समूह माना जाता है अर्थात ऐसा समूह जिससे दूसरे परिवार का रक्त संबंध न हो अर्थात एक गोत्र के लोग आपस में विवाह नहीं कर सकते पर दूसरे गोत्र में विवाह कर सकते, जबकि जाति एक अन्तर्विवाही समूह है यानी एक जाति के लोग समूह से बाहर विवाह संबंध नहीं कर सकते। हमारे ऋषि आयुर्वेद के ज्ञाता भी थे अतः गौत्र वर्जित विवाह प्रणाली के पीछे एक वैज्ञानिक सत्य प्रमुख रहा। जिन लोगों ने आयुर्वेद के सिद्धांत के अनुसार एक पुरुष का रक्त आने वाली सात पीढ़ियों तक उपस्थित रहता है और स्त्री का रक्त तीन पीढ़ियों तकायहां रक्त का तात्पर्य DNA से है । यदि इस प्रकार के रक्त में यदि मेल होता है,और उससे संतान उत्पत्ति होती है तो उस संतान का रक्त अर्थात DNA कमजोर होता है जिससे उसमे कई प्रकार की बीमारियाँ होने की सम्भावना होती है जैसे की शरीर की प्रतिरोधक क्षमता का कम होना, शारीरिक विकृतियाँ होना,वंशानुगत बीमारियाँ होना आदि।

इस प्रकार वैदिक गौत्र प्रणाली मुख्यतया: गुणसूत्र आधारित प्रणाली है। पढ़ी दर पीढ़ी रचनात्मकता और नकारात्मकता को प्रेषण करने वाले गुणसूत्रों के विकार दोष से बच कर एक स्वस्थ समाज का निर्माण करने के उद्देश्य से ही सगौत्र विवाह की वर्जना की गई थी क्योंकि एक ही गोत्र होने के कारण गुणसूत्रों में समानता होती है।

आधुनिक आनुवंशिक विज्ञान के अनुसार भी यदि सामान गुणसूत्रों वाले दो व्यक्तियों में विवाह हो तो उनकी सन्तति आनुवंशिक विकारों के साथ उत्पन्न होगी। ऐसे दंपत्तियों की संतान में एक सी विचारधारा, पसंद, व्यवहार आदि में कोई नयापन नहीं होता। ऐसे बच्चों में रचनात्मकता का अभाव होता है। विज्ञान द्वारा भी इस संबंध में यही बात कही गई है कि सगौत्र शादी करने पर अधिकांश ऐसे दंपत्ति की संतानों में अनुवांशिक दोष अर्थात् मानसिक विकलांगता, अपंगता, गंभीर रोग आदि जन्मजात ही पाए जाते हैं। आर्ष ऋषि इस वैज्ञानिक तथ्य से भलीभाँति परिचित थे अतः सगौत्र विवाह की वर्जना की गई।

भारतीय गौत्र परम्परा व्यक्ति के इतिहास को शुद्ध रूप से सहेज कर रखने की प्रणाली है जो समाज मे व्यापक रूप में सभी के पास किसी न किसी तरह उपलब्ध है।समाज के प्रत्येक वर्ग या वर्ग का वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग करते हुये सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, ऐतिहासिक व विविध तथ्यो एव मानव इतिहास के विभिन्न पक्षो मूल वर्ण, कुल, जाति उद्भव, पूर्वत आदिका अध्ययन इससे किया जा सकता है।

वंशावली लेखन की अत्यन्त प्राचीन और वैज्ञानिक गौत्र परम्परा और यजमानी प्रथा जैसी रीतियों के विशेष सन्दर्भ में वंशवृक्षों का अध्ययन कर न केवल हम हमारे समाज की सामाजिक सांस्कृतिक संरचना का अध्ययन कर सकते है वरन अतीत से रचनात्मक संवाद कर कितने ही ऐतिहासिक मौन तोड़े जा सकते है। आवश्यकता है कि वंशावली लेखक अपनी कलम की धार पैनी करते हुए वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर खोजी नज़रिए से इसे कबूतर से कम्प्यूटर युग की धारा से जोडने की पहल करें। वंशावली लेखकों के पुरूषार्थ से समरसता, एकात्मकता कायम हो सकती है। इतिहास को सहेजती गौत्र प्रणाली भारतीय समाज का वह आईना है जो उसका मूल चेहरा दिखाती है।

आलेख

डॉ नीता चौबीसा,

लेखिका, इतिहासकार एवं भारतविद, बाँसवाड़ा,राजस्थान